Indian J. Soc & Pol. 03(01): 2016 :37-44 **ISSN 2348-0084(P)**
ISSN 2455-2127 (O)

अंतर्राष्ट्रीय संबंध में सुरक्षा की नवीन अवधारणा तथा शक्ति संतुलन सिद्धान्त की प्रासंगिकता

मुहम्मद अजहरूद्दीन अंसारी[1]

[1]जूनियर रिसर्च फेलो, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ0प्र0),भारत

ABSTRACT

अंतर्राष्ट्रीय संबंध में 'सुरक्षा' की अवधारणा का प्रयोग परम्परागत रूप से वाह्य सैन्य अतिक्रमणों से राज्य की स्वतंत्रता, संप्रभुता तथा भूक्षेत्रीय अखण्डता की सुरक्षा अर्थात सैनिक सुरक्षा के लिए किया जाता रहा है। इसके पीछे मुख्य तर्क यह था कि यदि राज्य सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली व सुरक्षित होगा तो उस राज्य के नागरिक भी सुरक्षित होंगे। सुरक्षा की इस परम्परागत अवधारणा के केन्द्र में 'राज्य' होता था। पूरे शीत युद्ध काल के दौरान सुरक्षा की यही अवधारणा नीति निर्माण व अकादमिक जगत में निर्देशक सिद्धान्त के रूप में प्रभुत्वशाली बनी रही। सुरक्षा की इस परम्परागत अवधारणा के अंतर्गत सुरक्षा की प्राप्ति हेतु शक्ति संतुलन सिद्धान्त को सर्वाधिक विश्वसनीय शस्त्र के रूप में मान्यता प्राप्त रही है। अब जबकि 21वीं शताब्दी में व्यक्ति की सुरक्षा हेतु गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन, अशिक्षा, आर्थिक मंदी इत्यादि के रूप में अनेक गैर सैनिक खतरे व चुनौतियाँ मौजूद हैं, सुरक्षा को राज्यों के दृष्टिकोण से देखना कितना व्यावहारिक है? वर्तमान समय के इन गैर सैनिक खतरों का सामना करने के लिए नवीन गैर सैनिक साधनों की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध पत्र का केन्द्रीय उद्देश्य सर्वप्रथम परम्परागत सैनिक सुरक्षा से लेकर मानव सुरक्षा तक के सैद्धान्तिक विकास को रेखांकित करना है तत्पश्चात् सुरक्षा की इस नवीन व व्यापक अवधारणा के संदर्भ में परम्परागत सुरक्षा साधक सिद्धान्त 'शक्ति संतुलन सिद्धान्त' की उपादेयता का मूल्यांकन करना है।

KEYWORDS : *राष्ट्रीय सुरक्षा, मानव सुरक्षा, गैर सैनिक खतरे, जलवायु परिवर्तन, शक्ति संतुलन*

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के विभिन्न उपागमों में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्रकृति के संबंध में गहरे मतभेद हैं। चूँकि शक्ति संतुलन सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय संबंध के यथार्थवादी उपागम का एक मौलिक सिद्धान्त है अतः हम यहां अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का यथार्थवादी व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। यथार्थवाद के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारभूत ईकाई राज्य होते हैं जो परस्पर अंतःक्रिया करते हुए राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था अराजक होती है क्योंकि इसमें ऐसे किसी भी सर्वोच्च, बाध्यकारी सत्ता का अभाव होता है जो राज्यों की गतिविधियों को नियंत्रित कर सके। इस अराजक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में प्रत्येक राज्य अधिकतम शक्ति प्राप्त करने की होड़ में लगा रहता है क्योंकि अधिकतम शक्ति ही वह कारक है जिसके आधार पर कोई राज्य अपने हितों की सुरक्षा कर पाने में समर्थ होता है। किसी राज्य द्वारा अधिकतम शक्ति प्राप्ति का प्रयास विरोधी राष्ट्र के सम्मुख असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न करता है। इस असुरक्षा से निपटने के लिए वह दूसरा राज्य भी अपने प्रतिद्वन्द्वी राज्य से अधिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार अराजक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्य निरंतर इस प्रयास में रहते हैं कि विरोधी राष्ट्र की शक्ति इतनी अधिक न हो जाए कि वह अपनी इच्छा किसी दूसरे राज्य पर थोप सके। अतः राज्य निरंतर एक दूसरे की शक्ति को संतुलित करने का प्रयास करते रहते हैं। पूर्णतः अविश्वास के इस वातावरण में राज्यों की सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं राज्यों की ही होती है जिसके लिए वह किसी अन्य राज्य या संस्था पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। शक्ति संघर्ष के इस वातावरण में राज्यों के सम्मुख उत्तरजीविता की समस्या प्राथमिक महत्व का होता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के यथार्थवादी व्याख्या के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्त होते हैं–

- अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्य आधारभूत ईकाई होते हैं (Statism)
- अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में किसी सर्वोच्च नियंत्रक सत्ता का अभाव (Anarchy)
- सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं व्यक्तिगत राज्य की होती है (Self Help)
- अराजक व्यवस्था में राज्यों की सुरक्षा हेतु खतरा सदैव विद्यमान रहता है (Survival)

सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा

अंतर्राष्ट्रीय संबंध का यथार्थवादी सिद्धान्त पूरे शीत युद्ध के दौरान नीति निर्माण तथा अध्ययन क्षेत्र में प्रभुत्वशाली बना रहा जिसके अनुसार अराजक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों की सुरक्षा सर्वोच्च प्राथमिकता का विषय होता है। सुरक्षा के इस परम्परागत अवधारणा के अंतर्गत सुरक्षा का संदर्भ (Referent Object of Security) राज्य होता है। राज्य की सुरक्षा हेतु बाह्य सैन्य आक्रमण सर्वप्रमुख चुनौती प्रस्तुत करता है। स्वाभाविक रूप से इसके अंतर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा को उस क्षमता

1: Corresponding Author

के रूप में परिभाषित किया गया जिसके आधार पर कोई राज्य मुख्यतः बाह्य आक्रमण से अपनी स्वतंत्रता, संप्रभुता एवं भूक्षेत्रीय अखंडता की सुरक्षा कर पाने में समर्थ होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा व सैनिक सुरक्षा को एक दूसरे का पर्याय माना जाता था। इसके पीछे आधारभूत मान्यता यह थी कि यदि कोई राष्ट्र बाह्य सैन्य आक्रमण व हस्तक्षेप से सुरक्षित रहेगा तो वह राज्य तथा उसके नागरिक भी सुरक्षित होंगे।

वाल्टर लिपमेन ने सुरक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है ''कोई राज्य उसी सीमा तक सुरक्षित है जब तक युद्ध को टालने (Avoid) की इच्छा के बावजूद उसके आधारभूत मूल्य सुरक्षित रहें तथा यदि किन्ही परिस्थितियों में उसके आधारभूत मूल्यों को चुनौती मिले भी तो वह राज्य युद्ध द्वारा उन मूल्यों की सुरक्षा कर पाने में समर्थ हो।'' इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा को युद्ध में विजय प्राप्त कर पाने की क्षमता अर्थात् सैन्य क्षमता के रूप में देखा जाता था। यथार्थवादी विचारकों के अनुसार अराजक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों के पास शक्ति संतुलन के अतिरिक्त सुरक्षा का कोई दूसरा विकल्प ही नहीं होता है। इसके अतिरिक्त शक्ति संतुलन का सिद्धान्त वह महत्वपूर्ण साधन है जिसकी सहायता से न केवल राष्ट्रीय सुरक्षा बल्कि अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा भी संभव है। संक्षेप में, परम्परागत सुरक्षा की अवधारणा की निम्नलिखित प्रमुख मान्यताएँ हैं–

- राज्य की स्वतंत्रता, संप्रभुता तथा अंखडता हेतु बाह्य सैन्य आक्रमण सर्वप्रमुख चुनौती प्रस्तुत करता है।
- अतः यदि राज्य सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली होगा तो वह सुरक्षित भी होगा।
- यदि राज्य सुरक्षित होगा तो उसकी सीमा के अंदर रहने वाले नागरिक भी सुरक्षित रहेंगे अर्थात व्यक्ति की सुरक्षा व राज्य की सुरक्षा में किसी प्रकार का अतर्द्वन्द नहीं है।
- शक्ति संतुलन के माध्यम से राज्यों द्वारा एक दूसरे की सीमाओं के अतिक्रमण को निषिद्ध कर अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है।

सुरक्षा की नवीन अवधारणा

सुरक्षा की यह संकीर्ण व परम्परागत अवधारणा पूरे शीत युद्ध के दौरान नीति निर्माण व सुरक्षा अध्ययनों में प्रभुत्वशाली बनी रही। 1970 व 1980 के दशकों में घटित कुछ अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों विशेषकर मध्यपूर्व तेल संकट, आर्थिक मंदी, पर्यावरण क्षरण आदि ने सुरक्षा साहित्य का ध्यान आकृष्ट किया परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा को केवल सैनिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पर प्रश्न चिन्ह लगा तथा कुछ गैर सैनिक खतरों (Non-Military Threats) विशेषकर आर्थिक व पर्यावरणीय सुरक्षा को भी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण माना जाने लगा। सुरक्षा की इस परम्परागत अवधारणा में आमूल–चूल परिवर्तन 1980 के दशक के अंतिम वर्षों व मुख्यतः शीत युद्ध के अंत के बाद देखने को मिला जब राज्यों के बीच होने वाले युद्धों में कमी तथा राज्यों के भीतर होने वाले संघर्षों में वृद्धि, नृजातीय संघर्ष, मानवीय संकट, मानवाधिकारों का व्यापक पैमाने पर हनन आदि घटनाओं ने राष्ट्रीय सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा की अपर्याप्तता को उजागर किया।

इन सभी नवीन खतरों व असुरक्षाओं को परिभाषित करने तथा उनको चिन्हित कर पाने में राष्ट्रीय सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा सर्वथा असफल सिद्ध हुई। फलस्वरूप इन नवीन असुरक्षाओं को शामिल करने हेतु सुरक्षा की अवधारणा का उर्ध्वाधर व क्षैतिज दोनों ही ढंग से विस्तार हुआ। उर्ध्वाधर विस्तार (Vertical Expansion) का आशय है सुरक्षा के संदर्भ के रूप में राज्य के स्थान पर व्यक्ति को स्वीकार्यता मिली। क्षैतिज विस्तार (Horizontal Expansion) का आशय है सुरक्षा के लिए सैन्य खतरों के अतिरिक्त अनेक गैर सैन्य खतरों जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, खतरों को भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

शीत युद्ध के पश्चात युगोस्लाविया, रवांडा, कार्फूर, श्रीलंका सहित अनेक उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि राज्य बाह्य सैन्य अतिक्रमण से पूरी तरह सुरक्षित रहे तो उसके नागरिक भी उसी अनुपात में सुरक्षित होंगे। गरीबी, आतंकवाद, नृजातीय संघर्ष, जलवायु परिवर्तन, वंचितता इत्यादि के रूप में अनेक ऐसे गैर सैनिक असुरक्षा व खतरे उपस्थित हैं जो नागरिकों की सुरक्षा हेतु सबसे बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर रहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने इस परम्परागत धारणा को भी गलत सिद्ध किया जिसके अंतर्गत व्यक्ति की सुरक्षा को राज्य सुरक्षा में ही निहित व निर्भर माना जाता था। अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ स्वयं राज्य ही अपने नागरिकों की सुरक्षा हेतु बड़ा खतरा बन चुके हैं जो राज्य के शक्तिशाली होने तथा व्यक्ति की सुरक्षा के बीच अंर्तद्वन्द्व को दर्शाता है।

सुरक्षा की इस परम्परागत व संकीर्ण अवधारणा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मानव सुरक्षा (Human security) की नवीन अवधारणा का जन्म हुआ। मानव सुरक्षा की अवधारणा का उल्लेख सर्वप्रथम यू0एन0डी0पी0 की मानव विकास रिपोर्ट 1994 (UNDP ***Human Development Report 1994)*** में किया गया। सुरक्षा की नवीन अवधारणा अथवा मानव सुरक्षा को परिभाषित करते हुए मानव सुरक्षा आयोग 2003 ने लिखा है, "मानव जीवन के आधारभूत मूल्यों की इस प्रकार सुरक्षा जिससे मानव स्वतंत्रता का विस्तार तथा उसके आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो सके"। सुरक्षा की इस नवीन अवधारणा के अंतर्गत सुरक्षा के केन्द्र में राज्य के स्थान पर व्यक्ति होता है एवं सुरक्षा को व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाता है। अब राज्य को एकमात्र सुरक्षा प्रदाता के रूप में मान्यता नहीं प्राप्त है बल्कि वह कई सुरक्षा प्रदाता संस्थाओं में से एक है। यू0एन0डी0पी0 ने मानव सुरक्षा के सात आयामों की

चर्चा की है, जिसका वर्णन अग्रलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जाएगा।

1. आर्थिक सुरक्षा (Economic Security)

आर्थिक सुरक्षा से आशय है, सामान्यतः उत्पादक व पारिश्रमिक संबंधी कार्यों के द्वारा निश्चित न्यूनतम आय सुनिश्चित करना। इस उद्देश्य हेतु अंतिम उपाय के रूप में सार्वजनिक वित्त पोषित तंत्र का सहारा भी लिया जा सकता है। आर्थिक सुरक्षा अन्य सभी सुरक्षाओं व अधिकारों के मूल में होता है। न्यूनतम व निश्चित आय स्रोत के अभाव में अत्यधिक निर्धनता जन्म लेती है फलस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा सीमित होता है। वह वंचितता का शिकार होता है तथा अवसरों की असमानता उत्पन्न होती है। वंचितता तथा अवसरों की असमानता ऐसे कारक हैं जिसके कारण मनुष्य अपनी अंतर्निहित क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। आर्थिक सुरक्षा हेतु सर्वप्रमुख खतरा बेरोजगारी प्रस्तुत करता है जोकि एक सार्वभौमिक समस्या है। उच्च बेरोजगारी दर की समस्या केवल व्यक्ति की सुरक्षा हेतु ही चुनौती नहीं प्रस्तुत करता है, बल्कि यह सामाजिक संघर्ष, हिंसा, आतंकवाद, नशाखोरी, अपराध, अवैध व्यापार आदि के लिए भी मार्ग प्रशस्त करता है। आर्थिक सुरक्षा हेतु खतरों को किसी एक राज्य के साथ नहीं जोड़कर देखा जा सकता है क्योंकि भूमंडलीकरण के युग में एक राज्य के नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा दूसरे राज्य के नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा परस्पर निर्भर होते हैं।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कई बार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के उच्च विकास दर तथा आर्थिक सुरक्षा में अनिवार्यतः समानुपातिक संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है जो कि गलत है। उच्च आर्थिक विकास दर अनिवार्यतः आर्थिक सुरक्षा प्रदान करे यह कदापि आवश्यक नहीं है क्योंकि उच्च आर्थिक विकास दर इस बात का कोई आश्वासन नहीं देता है कि वितरण में किसको क्या व कितना मिलेगा। यही कारण है कि आज भारत में जो कि विश्व की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में से एक है तथा जिसने पिछले पंद्रह वर्षों में उच्च आर्थिक विकास दर प्राप्त करने में सफलता अर्जित की है, आय की असमानता अपने उच्चतम स्तर पर है। 2014 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार शीर्ष एक प्रतिशत भारतीय राष्ट्रीय सम्पदा के 49 प्रतिशत भाग पर कब्जा किए हुए हैं तथा शीर्ष 10 प्रतिशत भारतीय राष्ट्रीय संपदा के 74 प्रतिशत भाग पर काबिज हैं। असमानता की यह चौड़ी खाई व्यक्ति की सुरक्षा को कई प्रकार से प्रभावित करता है। आर्थिक सुरक्षा हेतु यह अनिवार्य है कि व्यक्ति को अपनी जीविका के स्रोतों के निरंतरता का आश्वासन हो।

2.राजनीतिक सुरक्षा (Political Security)

राजनीतिक सुरक्षा का आशय यह सुनिश्चित करना है कि नागरिक ऐसे समाज में रहें जो उनके आधारभूत मानव अधिकारों का सम्मान करता हो। राजनीतिक सुरक्षा में व्यक्तियों, समूहों के विचारों, सूचनाओं पर सरकारों के नियंत्रण से स्वतंत्रता सुनिश्चित करना भी सम्मिलित होता है। मानवधिकारों के मूल में यह भावना निहित है कि सभी मानव समान हैं तथा मानवाधिकार सार्वभौमिक होते हैं। परन्तु व्यवहार में प्रत्येक समाज में व्याप्त अनेकों प्रकार के असमानता, भेदभाव, शोषण इत्यादि इस मूल भावना को ही चोटिल करते हैं कि सभी मानव समान हैं। सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अन्याय, शोषण, भेदभाव समाज के एक बड़े भाग को वंचित बनाती है जिसके परिणामस्वरूप इन वर्गों का मुख्यधारा से बहिर्वेशन होता है। यह परिघटना एक समावेशी, सतत सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के मार्ग में सबसे प्रमुख बाधा उत्पन्न करती है। बहिर्वेशन वंचितता तथा राजनीतिक क्षरण का प्रमुख कारण है जिससे उस सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था हेतु वैधता का संकट उत्पन्न होता है। वैधता के संकट की परिणति अंततः राजनीतिक हिंसा, नृजातीय संघर्ष, गृह युद्ध, आतंकवाद व अलगाववाद के रूप में होता है।

अधिकांश विकासशील राष्ट्र इन समस्याओं से जूझ रहे हैं। ये राष्ट्र इन असहमति तथा विरोध के स्वरों जैसे नृजातीय आंदोलन, हिंसा, आतंकवाद की चुनौती से निपटने के लिए सैनिक शक्ति को और अधिक मजबूत बनाने को सर्वोच्च प्राथमिकता देते रहे हैं जिसके कारण विकास के मुद्दे जैसे गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, बेरोजगारी तथा अन्य आधारभूत संरचनाओं के विकास आदि पीछे छूट जाते हैं, उपेक्षा के शिकार होते हैं जो पुनः अनेक खतरों व असुरक्षाओं को जन्म देते हैं। ऐसे वातावरण में व्यक्ति की राजनीतिक सुरक्षा की प्राप्ति एक दुष्कर लक्ष्य सिद्ध होता है। किसी देश में राजनीतिक असुरक्षा का एक महत्वपूर्ण संकेतक है, सरकारों द्वारा सैनिक शक्ति को प्राथमिकता प्रदान करना। यदि कोई राज्य अपने नागरिकों के कल्याण की अपेक्षा सैनिक शक्ति में बढ़ोत्तरी को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता बनाता है तो इसे सैनिक व सामाजिक व्यय के असंतुलन में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक सुरक्षा के लिए यह भी आवश्यक होता है कि विचार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अक्षुण्ण बनी रहे, तथा सभी नागरिकों को समान रूप से उपलब्ध हो।

3. स्वास्थ्य सुरक्षा (Health Security)

स्वास्थ्य सुरक्षा का आशय है बीमारियों, महामारियों तथा हानिप्रद जीवनशैली से न्यूनतम सुरक्षा का आश्वासन। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में करोड़ों लोगों की मृत्यु प्रत्येक वर्ष अनेक संक्रमित रोगों तथा अन्य बीमारियों के कारण होती है। दूषित जल, स्वच्छता का अभाव, कुपोषण इत्यादि अनेक बीमारियों की जड़ हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में भागदौड़ भरी जीवन शैली भी अनेक रोगों का कारण है। जनसंख्या के अनुपात में चिकित्सकों, अस्पतालों तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं के अभाव में स्वास्थ्य सुरक्षा गंभीर संकट का सामना कर रहा है। 21वीं शताब्दी में जबकि विश्व ने अप्रत्याशित विकास किया है, प्रसव के दौरान होने वाली मृत्यु अभी भी बहुत अधिक है। इन

मौतों को सुरक्षित व सस्ती परिवार नियोजन के माध्यम से, प्रसव की प्रक्रिया योग्य चिकित्सकों की देखरेख में कराकर रोका जा सकता है। विश्व इस समय कम से कम तीस नवीन संक्रमित रोगों का सामना कर रहा है जैसे एवियन फ्लू, एच0आई0वी0, H_5N_1 एन्फ्लूएन्जा, हेपेटाइटिस सी, इबोला इत्यादि। प्रत्येक वर्ष पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 1 करोड़ बच्चे कुपोषण तथा अन्य रोगों के कारण काल के गाल में समा जाते हैं। 2015 में प्रकाशित विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर में कुल 90 लाख व्यक्ति ट्यूबरक्यूलोसिस (T.B.) से, मलेरिया से 19.8 करोड़ व्यक्ति, जबकि 3 करोड़ 26 लाख लोग एच0आई0वी0 से पीड़ित हैं। विश्व की कुल आबादी के 14 प्रतिशत अथवा लगभग 1 अरब लोगों के पास शौचालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण तथा अन्य बीमारियों जेसे कालरा, डायरिया इत्यादि जन्म लेते हैं। 74. 8 करोड़ लोग अभी भी स्वच्छ पेयजल की पहुँच से दूर हैं।

उदारीकरण के इस युग में जबकि विश्व की लगभग 1 अरब जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही हैं, स्वास्थ्य सेवाओं को बाजार के भरोसे छोड़ने के कारण मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएँ आम आदमी की पहुँच से दूर होती जा रही हैं। अधिकांश विकासशील राष्ट्रों का स्वास्थ्य बजट भी अपर्याप्त होता है। अत्यधिक निर्धनता, स्वास्थ्य सेवाओं के महंगे होने तथा जागरूकता के अभाव के कारण मरने वालों की संख्या बहुत ज्यादा है।

4. सामुदायिक सुरक्षा (Community Security)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो अनेक समूहों, संगठनों जैसे परिवार, समुदाय, धर्म, नृजातीय समूह इत्यादि का सदस्य होता है। ये समूह या संगठन मनुष्य को एक सांस्कृतिक पहचान व मूल्यों का एक विशिष्ट ढांचा उपलब्ध कराते हैं। यद्यपि मनुष्य अनेक परंपरागत समूहों का सदस्य होता है जहाँ वह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक एकात्मकता का अनुभव करता तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी पारम्परिक समूह या समुदाय लोकतांत्रिक तथा समावेशी ही होते हैं। अतः सामुदायिक सुरक्षा का आशय है मानव के उन समूहों, समुदायों की सुरक्षा जो मानव विकास में सकारात्मक भूमिका निभाते हों। प्रत्येक व्यक्ति के धर्म, भाषा, संस्कृति की सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक होता है। परम्परागत समूहों, संगठनों का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होता है।

आधुनिकता की तीव्र प्रक्रिया के फलस्वरूप इनमें से कई परम्परागत अस्मिताएँ व समूह टूटन का शिकार हो रहे हैं। उदाहरण के लिए संयुक्त परिवार अपने तमाम कमियों के बावजूद परिवार के सदस्यों को मुश्किल व तनावपूर्ण समय में भौतिक व मनोवैज्ञानिक अवलंब प्रदान करता था। आधुनिकता के प्रभावों के फलस्वरूप परम्परागत संयुक्त परिवार पहले नाभिकीय परिवार तथा वर्तमान समय में विखंडित परिवार (जिसमें पति, पत्नी, बच्चे सभी अलग–अलग रहते हैं) में परिवर्तित हो रहे हैं। इसी प्रकार संचार के साधनो व अन्य प्रभावों के कारण अनेक अन्य पारम्परिक भाषा, संस्कृतियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। इन सभी परिघटनाओं का मनोवैज्ञानिक परिणाम बहुत गहरे सिद्ध हो रहे हैं जिसका परिणाम हम किशोरों में तेजी से बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति, अवसादपूर्ण जीवन, नशाखोरी, अपराध, हिंसा इत्यादि में स्पष्टतः देख सकते हैं।

उदारीकरण व भूमंडलीकरण के इस युग में जहाँ सूचनाओं व विचारों का आदान–प्रदान सुविधाजनक हुआ है, कई परम्परागत अस्मिताओं के अस्तित्व हेतु संकट भी उत्पन्न हुआ है। विभिन्न अस्मिताएँ, समुदाय एक दूसरे को प्रतिद्वन्द्वी तथा अपने अस्तित्व हेतु खतरे के रूप में देख रहे हैं जिसका परिणाम सामुदायिक तनाव व संघर्ष के रूप में सामने आता है। विश्व के अधिकांश राष्ट्र नृजातीय विविधता वाले राष्ट्र हैं तथा नृजातीय संघर्ष एक सामान्य परिघटना बन चुका है। नृजातीय संघर्ष, सामुदायिक संघर्ष मानव सुरक्षा हेतु गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं। श्रीलंका, पाकिस्तान, भारत, नेपाल आदि राज्यों के उदाहरणों से इसकी पृष्टि हो चुकी है।

5. पर्यावरणीय सुरक्षा (Environmental Security)

पर्यावरणीय सुरक्षा का आशय है मनुष्य को प्रकृति के प्रकोप से बचाना। मनुष्य ने विज्ञान व तकनीक में प्रगति के साथ–साथ पर्यावरण को भी उसी रफ्तार से प्रदूषित किया है। जिसका परिणाम वन क्षेत्रों के संकुचन, जैव विविधता क्षरण, भूक्षरण, जल प्रदूषण, समुद्र जलस्तर में वृद्धि, मौसम चक्र असंतुलन, बारम्बार प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिल रहा है। उपरोक्त सभी खतरें वैश्विक प्रकृति के हैं। वैश्विक जलवायु परिवर्तन परम्परागत उत्तर–दक्षिण विभाजन से परे जाकर वैश्विक रूप से व्यक्ति की सुरक्षा हेतु चुनौती प्रस्तुत करता है। लगभग 200 वर्षों पूर्व अर्थशास्त्री थामस माल्थस ने (1798) में लिखा था, ''व्यक्तियों की आवश्यकता व खाद्य पदार्थों की अनुपलब्धता में असंतुलन अकाल, बीमारी व युद्ध को जन्म देते हैं।

आधुनिक युग में हुए अनेक शोध माल्थस के इस सिद्धान्त को प्रमाणित कर रहे हैं। पर्यावरणीय क्षरण एवं जलवायु परिवर्तन संघर्ष के प्रमुख स्रोत होते हैं। अधिकांश निर्धन राष्ट्रों में जहाँ उच्च शिशु मृत्यु दर के कारण तथा आय संभावनाओं को बढ़ाने के उद्देश्य से अधिकतम बच्चों की आवश्यकता पर बल दिया जाता है, जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि, संसाधनों के अभाव पर्यावरण पर अत्यधिक दबाव का मुख्य कारण होता है जो कि प्रायः संघर्ष व हिंसा में रूपांतरित हो जाता है।

दार्फूर (सूडान) का उदाहरण गरीबी, पर्यावरण क्षरण व संघर्ष के अंतःसंबंध को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। वर्षा में कमी, एवं भूमि के मरूस्थलीकरण ने दार्फूर के परम्परागत अंतवर्गीय संघर्ष को और भी भड़काने का कार्य किया है। 1970 व 1980 के दशक में दार्फूर के उत्तरी भागों में पड़े सूखे ने खानाबदोश जनसंख्या को देश के दक्षिण की ओर प्रवास करने

हेतु बाध्य किया जहाँ उनका स्थानीय जनजातियों के साथ संघर्ष हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि पर्यावरण क्षरण व जलवायु परिवर्तन मानव सुरक्षा के साथ–साथ राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु भी गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं।

6. खाद्य सुरक्षा (Food Security)

खाद्य सुरक्षा का अर्थ है सभी व्यक्तियों की सभी समय बुनियादी भोजन तक भौतिक व आर्थिक पहुंच सुनिश्चित करना। खाद्य सुरक्षा के लिए केवल अत्यधिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन ही नहीं पर्याप्त होता है बल्कि इसके साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों को न्यूनतम आवश्यक भोजन प्राप्त भी हो। राष्ट्रीय स्तर पर कोई राज्य आधिक्य खाद्य उत्पादन करने में सफल हो सकता है तथा अधिकांश राष्ट्र आज के तकनीकी युग में सफल हैं भी, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उस राज्य के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक न्यूनतम भोजन प्राप्त हो जाए। इस विरोधाभास के लिए मुख्य रूप से निम्नस्तरीय खाद्य वितरण तंत्र, त्रुटिपूर्ण नीतियाँ, कमजोर क्रय शक्ति (निर्धनता), सार्वजनिक निवेश की अपर्याप्तता उत्तरदायी ठहराए जा सकते हैं। खाद्य सुरक्षा तथा गरीबी दो परस्पर विरोधाभासी वास्तविकताएं हैं। अद्यतन आंकड़ों के अनुसार लगभग 79.5 करोड़ लोग भोजन की अपर्याप्तता से जूझ रहे हैं। इसका अर्थ है विश्व में प्रत्येक 9 व्यक्ति में से एक व्यक्ति सक्रिय व स्वस्थ जीवन यापन हेतु आवश्यक भोजन पाप्त करने में असमर्थ है। खाद्य असुरक्षा कुपोषण का प्रमुख कारण है जिससे लाखों बच्चे प्रत्येक वर्ष मरते हैं। उच्च शिशु मृत्यु दर तथा गरीबी एक मिश्रित कारक के रूप में जनसंख्या वृद्धि के लिए भी महत्वपूर्ण ढंग से उत्तरदायी होते हैं।

7. वैयक्तिक सुरक्षा (Personal Security)

वैयक्तिक सुरक्षा का आशय है विभिन्न प्रकार के भौतिक हिंसा से व्यक्ति की सुरक्षा। भौतिक हिंसा से सुरक्षा संभवतः सुरक्षा के किसी भी अन्य आयाम से अधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य अपने रोजमर्रा के जीवन में अनेक आकस्मिक व अप्रत्याशित खतरों से घिरा होता है। युद्ध, नृजातीय संघर्ष, राज्य द्वारा हिंसा, बलात्कार, लूट, बाल मजदूरी, बंधुआ मजदूरी, देह व्यापार इत्यादि मानव की सुरक्षा हेतु गंभीर चुनौती प्रस्तुत करते हैं। अनेक अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों जैसे विकास, जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में विश्व समुदाय कभी उत्तर–दक्षिण तो कभी विकसित व विकासशील खेमें में बंट जाता है। भौतिक हिंसा से व्यक्ति की सुरक्षा अथवा वैयक्तिक सुरक्षा एक ऐसी चुनौती है जिससे सभी समाजों, चाहे वह उत्तर के हो या दक्षिण के, चाहे वह विकसित हों या विकासशील, को समान रूप से सामना करना पड़ रहा है। उच्च बेरोजगारी दर, निर्धनता, अनेक सामाजिक बुराईयों जैसे अपराध, नशावृत्ति आदि को प्रोत्साहित करते हैं फलस्वरूप लूटपाट, हत्या, बलात्कार इत्यादि की घटनाओं में वृद्धि होती है।

21वीं शताब्दी में विश्व के कई समाजों में आज भी बंधुआ मजदूरी, जमीदारी प्रथा गहरी जड़ जमाए हुए हैं। राज्यों के द्वारा अपनी सत्ता का दुरूपयोग की घटनाएं प्रायः सुनने व देखने को मिलती रहती हैं। राज्य के द्वारा व्यापक स्तर पर मानवाधिकारों का हनन, शोषण, भेदभाव समाज में अनेक दीर्घकालिक संघर्षों को जन्म देता है। अतः राज्य केवल सुरक्षा प्रदान करने के लिए ही नहीं बल्कि कभी कभी असुरक्षा उत्पन्न करने वाले संस्था के रूप में भी स्वीकार किया जाने लगा है।

मानव सुरक्षा के उपरोक्त सभी आयामों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है उनकी अन्तर्निभरता। यदि मानव सुरक्षा कोई भी एक आयाम प्रभावित होता है तो यह अवश्य ही दूसरे अन्य आयामों को भी प्रभावित करेगा। उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका है कि सुरक्षा को केवल सैनिक दृष्टि से देखना वर्तमान समय में केवल अपर्याप्त ही नहीं बल्कि अव्यवहारिक भी हो गया है। यदि राज्यों की सीमाओं के अंदर रहने वाले नागरिक असुरक्षित होंगे तो राज्य चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, सुरक्षित नहीं रह सकता। नवीन अवधारणा के अंतर्गत सुरक्षा को सशस्त्रीकरण (Armament) की सहायता से नहीं बल्कि मानव विकास की सहायता से प्राप्त करना संभव है।

मानव सुरक्षा, राज्य सुरक्षा तथा अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के मध्य संम्बन्ध

राज्य केन्द्रित सुरक्षा की अवधारणा के समर्थक (मुख्यतः यथार्थवादी विचारक) मानव सुरक्षा की अवधारणा की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि यह राज्य की सुरक्षा प्रदाता की भूमिका को नकारता है। यह आलोचना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती है क्योंकि वास्तव में सुरक्षा की यह नवीन अवधारणा राज्य सुरक्षा की पूरक है। राज्य संप्रभुता व हस्तक्षेप के विषय पर गठित अंतर्राष्ट्रीय आयोग ने भी 2001 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट "**दि रिस्पांसिबिलिटी टू प्रोटेक्ट**" में इस पर सहमति व्यक्त की है। आयोग का मानना था कि लोगों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सर्वप्रथम उस राज्य का है जिस राज्य के लोग प्रभावित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त मानव सुरक्षा के अंतर्गत व्यक्ति की सुरक्षा के साथ–साथ सशक्तिकरण पर भी ध्यान दिया जाता है जिसमें राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

अतः यह आरोप कि सुरक्षा की नवीन अवधारणा राज्य की भूमिका को नकारता है या कम करता है, अत्यंत कमजोर है। यह अवश्य है कि सुरक्षा की इस नवीन अवधारणा के अंतर्गत नागरिकों की सुरक्षा तथा सुरक्षा का अधिकार के साधनों पर राज्य का एकाधिकार स्वीकार नहीं किया जाता है। राज्य के अतिरिक्त क्षेत्रीय, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ व संगठन, गैर सरकारी संगठन, नागरिक समाज भी सुरक्षा समस्याओं के प्रति जागरूकता फैलाने, उसे खत्म करने तथा उससे लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

सुरक्षा की परम्परागत संकीर्ण अवधारणा सुरक्षा के लिए केवल सैन्य खतरों पर जोर देता था तथा राज्य की सुरक्षा में ही व्यक्ति की सुरक्षा निहित मान लेता था। सुरक्षा की नवीन अवधारणा के अंतर्गत सात आयामों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका है कि असुरक्षा के स्रोत अब बहुत व्यापक हो चुके हैं जिसके कारण यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है कि राज्य सैन्य आक्रमण से पूरी तरह सुरक्षित रहे तो उसकी सीमा के अंदर रहने वाले नागरिक भी पूरी तरह सुरक्षित रहें। नागरिकों की सुरक्षा हेतु गैर सैनिक खतरे जैसे गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी अशिक्षा इत्यादि गंभीर चुनौती दे रहे हैं। इन गैर सैनिक खतरों की परिणति प्रायः गृहयुद्ध, नृजातीय संघर्ष, आतंकवाद, पृथकतावाद के रूप में होती है जो वर्तमान समय में राज्यों के मध्य युद्धों की संभावना अत्यन्त सीमित होने के बावजूद, राज्य की स्वतंत्रता, संप्रभुता तथा अखंडता हेतु गंभीर संकट उत्पन्न करते हैं। उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य सुरक्षा की सहायता से मानव सुरक्षा अनिवार्यतः प्राप्त हो जाए यह आवश्यक नहीं है जबकि मानव सुरक्षा हेतु संकट राज्य सुरक्षा के लिए भी असुरक्षा उत्पन्न करेगा यह अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त परम्परागत सुरक्षा की अवधारणा के अंतर्गत यह माना जाता था कि शक्ति संतुलन की सहायता से न केवल राष्ट्रीय सुरक्षा बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा की प्राप्ति भी संभव है। इसके पीछे आधारभूत मान्यता यह था कि यदि राज्य एक दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण न करें तो अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की प्राप्ति की जा सकती है। शीतयुद्ध के बाद राज्यों के मध्य होने वाले युद्धों की संख्या में तेजी से गिरावट आई है इसके बावजूद अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा एक सपने के समान है जिसे प्राप्त नहीं किया जा सका है।

वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को केवल राज्यों के बीच होने वाले युद्धों से ही चुनौती नहीं मिल रही है बल्कि इसमें गैर सैनिक खतरे बहुत प्रभावी ढंग से चुनौती प्रस्तुत कर रहे हैं। इन गैर सैनिक खतरों की जड़े राज्यों के भीतर पाए जाने वाले विषमता, वंचितता, अन्याय, शोषण इत्यादि में ढूंढा जा सकता है। दूसरे अर्थो में अब परम्परागत युद्धों का स्थान नवीनयुद्धों ने ले लिया है। नवीन युद्ध, परम्परागत युद्धों से कर्ता, लक्ष्य, तकनीक एवं वित्त पोषण के आधार पर भिन्न हैं। जहाँ परम्परागत युद्ध राज्यों की नियमित सेनाओं के मध्य होता था, वहीं दूसरी ओर नवीन युद्धों के अंतर्गत अनेक गैर राज्य कर्ता (Non- State Actors) बहुत महत्वपूर्ण हो चुके हैं। मध्य एशिया में ISIS , अफगानिस्तान व पाकिस्तान में तालिबान, भारत में नक्सलवाद इस तथ्य के प्रमुख उदाहरण हैं।

21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए खतरा जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, मानव तस्करी, नाभिकीय प्रसार इत्यादि प्रस्तुत कर रहें है। अतः वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा हेतु चुनौती राज्यों द्वारा कम बल्कि गैर राज्य कर्ताओं द्वारा अधिक मिल रही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि राज्यों की सीमाओं के अंदर रहने वाले नागरिकों का विकास व सुरक्षा सुनिश्चित किया जाए तो राज्य सुरक्षा के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की प्राप्ति भी संभव है।

नवीन असुरक्षाओं के युग में शक्ति संतुलन सिद्धान्त की प्रासंगिकता

21 वीं शताब्दी में जबकि सुरक्षा को विस्तृत अर्थों में व्यक्ति को केन्द्र में रखकर, न कि राज्य को, देखा जाने लगा है, शक्ति संतुलन सिद्धान्त की प्रासंगिकता का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। यथार्थवादी साहित्य में शक्ति संतुलन अंतर्राष्ट्रीय संबंध का केवल एक सिद्धान्त मात्र न होकर सुरक्षा प्राप्ति का एक शक्तिशाली साधन भी समझा जाता रहा है। इस विवेचन का मुख्य उद्देश्य यह परीक्षण करना है कि क्या बदली हुई परिस्थितियों में भी शक्ति संतुलन सिद्धान्त की सहायता से सुरक्षा की प्राप्ति संभव है? शक्ति संतुलन की सहायता से सुरक्षा की प्राप्ति की कुछ पूर्व शर्तें हैं–

- एक राज्य की सुरक्षा हेतु खतरा केवल वाह्य सैन्य आक्रमण हो।
- एक राज्य की सुरक्षा दूसरे राज्य के लिए असुरक्षा का कारण बने।
- सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं राज्य की हो।
- राज्य की सुरक्षा व व्यक्ति की सुरक्षा में अंतर्विरोध न हो।

शक्ति संतुलन सिद्धान्त की प्रासंगिकता का परीक्षण हम उपरोक्त चारों शर्तो के आधार पर करेंगे। हम उपरोक्त विवेचन में यह देख चुके हैं कि शीत युद्ध के अंत के पश्चात राज्यों के मध्य होने वाले युद्धों की संख्या में तेजी से गिरावट दर्ज की गई है। वर्तमान समय में राज्यों की सुरक्षा हेतु खतरा वाह्य सैन्य आक्रमण के अतिरिक्त अनेक घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय गैर सैनिक खतरे जैसे निर्धनता, बेरोजगारी, जलवायु परिवर्तन, महामारी, आतंकवाद इत्यादि के रूप में मौजूद हैं जिनका सामना सैनिक शक्ति में वृद्धि करके नहीं किया जा सकता है।

गैर सैनिक खतरे (Non- Military Threats) किसी भी सैन्य शक्ति या शक्तिशाली राज्य के सीमाओं का सम्मान नहीं करते हैं। द्वितीय, गैर सैनिक खतरे सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं। विश्व का कोई भी राज्य यह दावा नहीं कर सकता है कि जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, आर्थिक मंदी उसके लिए असुरक्षा या खतरा उत्पन्न नहीं करते हैं। परम्परागत सुरक्षा की अवधारणा के विपरीत, जिसमें यह माना जाता था कि एक राज्य की सुरक्षा दूसरे राज्य के लिए असुरक्षा होता है, उपरोक्त सभी गैर सैनिक खतरे सभी राज्यों व उनके नागरिकों की सुरक्षा को समान रूप से प्रभावित करते हैं। इनके सार्वभौमिक प्रभाव के कारण इनसे निपटने की जिम्मेदारी किसी एक राज्य की न होकर संपूर्ण विश्व समुदाय की है। जलवायु परिवर्तन सम्मेलन

इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। चौथा पूर्व शर्त है कि राज्य की सुरक्षा व व्यक्तियों की सुरक्षा के मध्य कोई अंतर्विरोध न हो परन्तु वास्तविकता तो यह है कि शक्ति संतुलन के सिद्धान्त में ही यह अंतर्विरोध निहित है जो अवसर मिलते ही प्रकट हो जाता है।

विश्व के अधिकांश निर्धन, विकासशील राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता, संप्रभुता तथा भूक्षेत्रीय अखंडता (Territorial Integrity) की रक्षा हेतु अनेक संकटों से जूझ रहे है, इन संकटों से निपटने के लिए सैन्य शक्ति में वृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हैं। ये राष्ट्र अपने राष्ट्रीय व्यय का एक बड़ा हिस्सा सैन्य सुरक्षा की प्राप्ति हेतु असंतुलित ढंग से व्यय करते हैं फलस्वरूप विकास के अन्य मुद्दे पीछे छूट जाते हैं। यह परिघटना राज्यों के समक्ष 'शस्त्र या भोजन की दुविधा' **(Guns Versus Butter Dilemma)** उत्पन्न करता है। असंतुलित ढंग से सैन्य सुरक्षा की प्राप्ति का प्रयास मानव सुरक्षा हेतु स्वयं कई दीर्घकालिक खतरों को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त इस तथ्य के भी पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हैं जो यह दर्शाते हैं कि राज्य स्वयं कई बार अपने नागरिकों की सुरक्षा हेतु खतरा उत्पन्न कर देते हैं। श्रीलंका, पाकिस्तान, सीरिया इत्यादि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

निष्कर्ष

भूमंडलीकरण के इस युग में जहां एक ओर मानव ने अपने सुख–सुविधा के अनेक साधनों की खोज करने में सफलता अर्जित की है वहीं दूसरी ओर उसी अनुपात में अनेक खतरों व असुरक्षाओं को भी जन्म दिया है। वर्तमान समय में उत्पन्न नित् नवीन प्रकार के गैर परम्परागत खतरों से निपटने के लिए परम्परागत साधनों की उपादेयता अत्यन्त ही सीमित हो जाती है। सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा के अंतर्गत सुरक्षा प्राप्ति के लिए सैन्य साधनों पर जोर दिया जाता था वहीं वर्तमान युग में मौजूद गैर सैनिक खतरों से निपटने के लिए मानव विकास की आवश्यकता को रेखाकिंत किया जाता है। नवीन परिस्थितियों में राज्य के अतिरिक्त गैर राज्यकर्ता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं अतः अब यह मान्यता कि अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्य ही सर्वप्रमुख कर्ता होते हैं, भ्रमपूर्ण है। आधुनिक समय में विद्यमान खतरों व असुरक्षाओं को प्रतिद्वन्दिता के माध्यम से नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से ही खत्म किया जा सकता है। अतः सुरक्षा की इस नवीन अवधारणा के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग सर्वोपरि सद्गुण है।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए आवश्यक है कि सभी राज्य समान रूप से इन असुरक्षाओं, खतरों को स्वीकारें जो कि एक दुष्कर कार्य रहा है। सुरक्षा की नवीन अवधारणा के संदर्भ में शक्ति संतुलन सिद्धान्त की प्रासंगिकता के संबंध में यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि शक्ति संतुलन सिद्धान्त एक ही साथ प्रासंगिक व अव्यवहारिक दोनों है। शक्ति संतुलन एक सिद्धान्त के रूप में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के मार्ग में कौन–कौन सी बाधाएँ हैं। शक्ति संतुलन सिद्धांत एक सीमा तक राज्यों के व्यवहार की सटीक व्याख्या देता है अतः एक सिद्धान्त के रूप में शक्ति संतुलन सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है। एक सिद्धान्त होने के साथ–साथ शक्ति संतुलन एक प्रक्रिया भी है जिसकी सहायता से सुरक्षा प्राप्ति का प्रयास किया जाता रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र में विवेचन के दौरान यह सिद्ध हो चुका है कि नवीन असुरक्षाओं व खतरों के इस युग में शक्ति संतुलन की प्रक्रिया द्वारा सुरक्षा की प्राप्ति की संभावना अत्यंत क्षीण है। अतः एक प्रक्रिया के रूप में शक्ति संतुलन वर्तमान समय में यदि पूरी तरह अप्रासंगिक नहीं तो अव्यवहारिक अवश्य हो चुका है।

REFERENCES

Kaldor, Mary (2013) In Defence of New Wars, *Stability,* 2 (1)

Baylis, J., Smith, S., Patricia, O. (2014) *The Globalization of World Politics : An Introduction to International Relations* (United Kingdom : Oxford University Press).

UN Commission on Human Security (2003), *Human Security Now : Protecting and Empowering People* (New York : United Nations).

International Commission on Intervention and State Sovereignty (2001) *The Responsibility to Protect* (Canada : International Development Research Centre).

Report of The Secretary- General's High-Level Panel on Threats, Challenges and Change (2004) *A more secure world : our shared responsibility* (New York : United Nations). available online at http.//www.un.org/en/peacebuilding/pdf/historical/hlp_more_secure_ world_pdf

Buzan, B. and Hansen, L. (2009) *The Evolution of International Security Studies* (Cambridge : Cambridge University Press).

UNDP (1994) *Human Development Report 1994,* (New York : Oxford University Press).

Richard, A.M., Barnett, J., Macdonald and O' Brien(ed.) (2010) *Global Environmental Change and Human Security* (London : MIT Press).

Tadjbakhsh, and Chenoy, A. (2007) *Human*

Security: Concepts and Implications (London : Routledge).

Duffield, M. (2007) *Development, Security and Unending War : Governing The World of Peoples* (UK : Polity Press).

World Health Organisation (2015) *World Health Statistics 2015* (Geneva: WHO) available online at http://www.who.int